E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 11 | November 2025

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में महिला सशक्तिकरण : एक सामाजिक विश्लेषण

विनोद कुमार सिंह [1*], डॉ0 राधेश्याम सरोज [2]

[1] शोध छात्र, आर0आर0पी0जी0 कॉलेज, अमेठी, उ0 प्र0

[2] शोध–निर्देशक, आर0आर0पी0जी0 कॉलेज, अमेठी, उ0 प्र0

*Email: vinods5787@gmail.com

प्रस्तावना

महिला सशक्तिकरण को सरल शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि वह अपने जीवने से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सकती है और अपने परिवार तथा समाज में अच्छे से रह सकती है। समाज में उनके मूलभूत अधिकारों को प्राप्त कराने में सक्षम बनाना 'महिला सशक्तिकरण' कहलाता है। सशक्तिकरण से आशय किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है, जिससे उसमें ये योग्यता आ जाती है कि वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया तथा इसी वर्ष 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया। जो कि महिलाओं के बढ़ते महत्व को दर्शाता है। भारत एक विविधताओं से भरा देश है जहाँ महिला सशक्तिकरण की एक अत्यधिक कठिन, बहुआयामी और ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है। भारतीय समाज की संरचना परम्परागत रूप से पितृसत्तात्मक रही है। यहाँ महिलाओं को लम्बे समय से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भागीदारी से वंचित रखा गया। किन्तु भारत की स्वतंत्रता के पश्चात्–भारतीय संविधान द्वारा उन्हें उनकी मानवीय गरिमा को ध्यान में रखते हुए पुरूषों के बराबर अधिकार दिया गया। यह शोध–पत्र भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् महिला सशक्तिकरण के सामाजिक आयामों जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक मानदण्डों में बदलाव, घरेलू हिंसा, धार्मिक दृष्टिकोणों आदि का विश्लेषण करता है।

महिला सशक्तिकरण का सामाजिक विश्लेषण

महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा सर्वाधिक मूलभूत माध्यम है। यह वह उपकरण है जिसके द्वारा महिलाएँ समाज को अपनी सशक्त भूमिका की अनुभूति करा सकती है। शिक्षा के द्वारा ही महिलाएँ अपनी दक्षता, कौशल, ज्ञान, क्षमताओं आदि का विकास करती है। इसके द्वारा महिला मानव पूँजी का श्रेष्ठ विकास होता है, जो राष्ट्र निर्माण में सहायक की भूमिका अदा करता है। शिक्षित महिला सामाजिक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में अपना योगदान देती है। महिला सशक्तिकरण का आशय है महिलाओं में छिपी हुई उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को विकसित करना जिनको व्यवहार में अपनाकर वे अपने विकास की ओर खुद कदम बढ़ा सके। इस कार्य में शिक्षा का सर्वाधिक योगदान होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जब पूरे विश्व के लिए सतत् विकास लक्ष्य को निर्धारित किया गया तब उसमें समावेशी शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया गया।

एक महिला के शिक्षित होने का आशय होता है कि एक परिवार का शिक्षित होना क्योंकि परिवार से समाज का समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण में महिलाओं का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। स्वतंत्रता के बाद हुई पहली जनगणना 1951 में पुरूषों की साक्षरता दर

जहाँ 27.16 प्रतिशत थी वहीं महिलाओं की साक्षरता दर केवल 8.86 प्रतिशत थी। वर्ष 2011 की जनगणनानुसार भारत में जहाँ पुरूषों की साक्षरता दर 80.9 प्रतिशत हो गई वहीं महिलाओं की 64.6 प्रतिशत है। भारतीय राज्यों जैसे– उ0प्र0, म0प्र0, झारखण्ड आदि में महिला साक्षरता दर 60 प्रतिशत से कम है। इससे जाहिर होता है कि महिला शिक्षा के क्षेत्र में काफी सुधार होते हुए भी अभी उन्हें इस क्षेत्र में लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ रहा है।

महिलाओं एवं बालिकाओं को शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे– विद्यालय में शौचालयों की कमी, आने–जाने के लिए साधनों का अभाव, परिवार में लड़कों की तरह समान व्यवहार न किया जाना, गरीबी के कारण शिक्षा से वंचित होना, शिक्षा के प्रकार में भेदभाव किया जाना आदि शामिल है। हालांकि समय के साथ शिक्षा को लेकर सरकार तथा नागरिक समाज दोनों के रवैये में परिवर्तन आता रहा है। शिक्षित माता–पिता अपने लड़कियों को लड़कों के समान ही शिक्षा का संसाधन उपलब्ध करवा रहे है। उनकी सोच उन्हें आत्मनिर्भर बनाने की है। सरकार भी सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान आदि के द्वारा बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवा रही है तथा उन्हें जिन भौतिक संसाधनों की समस्या का सामना करना पड़ रहा है उसे दूर करने का हर संभव प्रयास अपनी योजनाओं के द्वारा कर रही है। नई शिक्षा नीति 2020 इस दिशा में सरकार द्वारा उठाया गया एक अग्रगामी कदम है। भौतिक संसाधन, सामाजिक जागरूकता और व्यवहारिक पाठ्यक्रम इस त्रिसूत्री पर सरकार और समाज दोनों समन्वय से कार्य करें तो शत प्रतिशत बालिका शिक्षा का लक्ष्य साकार करना संभव है। यह सर्वविदित है कि महिला शिक्षा का विकास आजादी के पहले की अपेक्षा पर्याप्त हुआ है, फिर भी इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

घरेलू हिंसा सामान्यतया एक महिला द्वारा अपने परिवार के पुरूष सदस्यों या रिश्तेदारों द्वारा झेली गई हिंसा होती है। इस हिंसा से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। वैवाहिक हिंसा के प्रकार में शामिल है– महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करना, उनके साथ मारपीट करना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना (यह महिलाओं के प्रति हिंसा का सबसे अधिक घृणित रूप है), शारीरिक रूप से महिला को यौन सम्बन्ध बनाने के लिए मजबूर करना, पति सहित परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा विभिन्न तरीकों से महिला पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना आदि। घरेलू हिंसा कई रूप ले सकती है और इसे पहचानना सदैव आसान नहीं होता है। सामान्यतः महिलाएँ घरेलू हिंसा का शिकार होती है लेकिन पुरूष भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे हैं।

महिलाओं से सम्बन्धित घरेलू हिंसा प्राचीन काल से आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में सदैव विद्यमान रही है। भारत की स्वतंत्रता के पहले भारतीय समाज सुधारकों द्वारा इस पर कड़ा प्रहार किया गया। आजादी के बाद से लेकर अब तक प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, बुद्धिजीवी वर्गों तथा स्वयं सहायता समूहों द्वारा सभाओं और संगोष्ठी आदि के द्वारा प्रचार–प्रसार कर और इस मामले को समाज में बराबर उठाकर इसको दूर करने का प्रयास उनके द्वारा अनवरत किया जा रहा है। सरकारी स्तर पर भी इसके लिए कई प्रकार के कानूनी प्रयास किये गये हैं। सबसे पहला कानून दहेज निषेध अधिनियम 1961 था, जिसने दहेज लेने व देने को अपराध घोषित कर दिया था। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 महिला को अपने वैवाहिक घर में रहने का अधिकार देता है तथा वह अपने

प्रति हुई हिंसा के विरूद्ध मामला भी दर्ज करा सकती है। इस प्रकार के प्रयास महिला को सशक्त बनाने का कार्य करते हैं।

भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति सदैव एक समान नहीं रही है। समय–समय पर उनमें बदलाव होते रहे हैं। उनकी स्थिति का मूल्यांकन करें तो वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक उनकी सामाजिक स्थिति में विभिन्न प्रकार के उतार–चढ़ाव आते रहे हैं और साथ ही उनके अधिकारों में भी बदलाव होता रहा है। वैदिक काल में उनकी सामाजिक दशा कुछ एक मामलों को छोड़कर पुरूषों के समान थी। उत्तर वैदिक काल से परिवार का ढाँचा पितृसत्तात्मक होता चला गया जो कालान्तर में और अधिक कठोर बन गया और आज तक भारतीय समाज पितृसत्तात्मक विचारधारा से मुक्त नहीं हो पाया है, हालांकि इसमें शिथिलन अवश्य दिखाई देता है।

भारत में सदियों से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सहित सभी स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखा जाता रहा है और वे अधिकार विहीन रही है। इसका कारण पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण रहा है। यह ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरूषों को महिलाओं से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसके द्वारा महिलाओं को हिंसा या हिंसा की धमकी द्वारा अपने अधीन किया जाता है। अधिकतर महिलाएँ पितृसत्तात्मक ढाँचे और विचारधाराओं की वजह से कष्ट उठाती है। उन्हें असमानताओं और पराधीनता के दौर से गुजरना पड़ता है। महिलाए सामाजिक और मानव विकास के सभी सूचकों में पुरूषों से पीछे रह जाती है। भारत में महिलाओं से जुड़े स्वास्थ्य, पोषण, शैक्षणिक स्तर, कौशल पारिश्रमिक वाली नौकरियाँ पुरूषों की तुलना में सीमित रही है। यहाँ ध्यातव्य है कि बीसवी सदी के दौरान नब्बे के दशक में इनमें सुधार देखने को मिला जब भारत का आर्थिक उदारीकरण किया गया। इससे महिलाओं के लिए रोजगार के व्यापक अवसर उपलब्ध हुए। इस समय महिला साक्षरता दर करीब 40 प्रतिशत थी जो आगे 2011 की जनगणना में बढ़कर 64.6 प्रतिशत तक पहुँच गई। इसने पितृसत्तात्मक सोच पर कठोर प्रहार किया, जिसके कारण आज एक बड़ी सीमा तक सभी सामाजिक क्षेत्रों में लैंगिक भेदभाव का अंतर कम हो गया है।

भारतीय धर्मग्रन्थों में स्त्री को माता कहा गया है। उसे मातृशक्ति और दैविक शक्ति के रूप में सम्मानित किया गया है। इसके बावजूद भारत में प्राचीन काल तथा मध्य काल से अनेक धार्मिक बुराइयाँ स्त्रियों से सम्बन्धित प्रचलित हुई, जैसे–सती प्रथा और जौहर प्रथा एवं पर्दा प्रथा। सती प्रथा में पति की मृत्यु के बाद पत्नी पति की चिंता में जीवित जला दी जाती थी। दुर्भाग्य की बात यह है कि यह प्रथा 1829 में कानूनी रूप से समाप्त किये जाने के बाद भी भारत की आजादी के पश्चात् 1987 में राजस्थान प्रान्त में देखने को मिली। इसके बाद भारतीय संसद द्वारा सती (निरोध) अधिनियम 1987 द्वारा इस प्रथा को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया। मध्यकाल में जौहर प्रथा (अब समाप्त) तथा पर्दा प्रथा का चलन भी बहुत बढ़ गया था। इसमें से पर्दा प्रथा आज भी समाज में दिखाई देता है लेकिन अब यह काफी कमजोर पड़ चुका है। सदियों से भारत में विधवाओं की स्थिति दयनीय रही है। उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा है और साथ ही उन्हें समाज में अपशकुन समझा जाता रहा है। इनकी स्थिति में सुधार सर्वप्रथम 1856 ई0 में हुई जब विधवा पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता दी गई। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् इसे नागरिक समाज तथा सरकारी प्रयासों द्वारा अत्यधिक बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त करने का प्रयास भी किया जा रहा है।

भारत की स्वतंत्रता के समय भारत में महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति अत्यन्त, दयनीय अवस्था में थी। उच्च मातृ मृत्यु दर, कम जीवन प्रत्याशा, एनीमिया एवं कुपोषण की समस्या, निरक्षरता के कारण स्वास्थ्य जागरूकता का अभाव, सामाजिक कुरीतियाँ, अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाएँ जैसे–अस्पतालों और डाक्टरों की भारी संख्या में कमी आदि समस्याएँ भारत के सामने मुँह बाए खड़ी थी। वर्तमान समय में इन समस्याओं से बड़े स्तर पर निजात पा लिया गया है। आजादी के बाद से महिलाओं के जीवन प्रत्याशा में लगातार सुधार हुआ है जो 1980 के दशक में पुरूषों से अधिक हो गई है। वर्तमान में यह औसतन 73 वर्ष के करीब पहुँच गई है। मातृ मृत्यु दर घटकर 2022 में 88 प्रति लाख हो गई है। कुल प्रजनन दर 1965 के आस–पास प्रति महिला 6 बच्चों से घटकर 2022 में 2.0 पर स्थिर हो गई है। जन्म दर में भी भारी गिरावट दर्ज की गई है जो 2022 में 19.1 प्रति हजार हो गई है।

वर्तमान समय में प्रजनन आयु वर्ग की आधी से अधिक आबादी एनीमिया एवं कुपोषण से पीड़ित है। निरक्षरता और पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता के कारण महिलाओं को प्रायः पुरूषों की तुलना में कम चिकित्सकीय सुविधा प्राप्त करने की संभावना होती है। घरेलू हिंसा से अवसाद और तनाव जैसी स्वास्थ्य समस्यायें पैदा होती है। सरकार ने महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम शुरू किये हैं, जैसे– जननी सुरक्षा योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान, आयुष्मान भारत–स्वास्थ्य और कल्याण केन्द्र, प्रधानमंत्री मातृवंदना योजना, स्वस्थ्य नारी सशक्त परिवार अभियान। इन सभी योजनाओं को सकारात्मक प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है लेकिन इन सबके बावजूद सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा सुनिश्चित करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

निष्कर्ष

समाज में महिलाओं का स्थान पुरूषों के समान ही महत्वपूर्ण है। आज महिलाएँ सबला नारी के रूप में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। आजादी के बाद जैसे–जैसे महिलाओं में शिक्षा का स्तर बढ़ा है उसी क्रम में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव आया है। वे व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर निर्णय लेने में सक्षम हुई है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में जीवन प्रत्याशा से लेकर मातृ मृत्यु दर में सुधार हुआ है। परम्परागत सामाजिक मानदण्डों में बदलाव हुआ है, जैसे–पितृसत्तात्मक सोच में सकारात्मक परिवर्तन, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाया जाना, भेदभाव पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचों पर प्रहार करना आदि महिला सशक्तिकरण की दिशा के सामाजिक क्षेत्र में बढ़ाया गया बहुआयामी कदम है।

सन्दर्भ सूची

1. मीना जनक सिंह : ''महिला सशक्तिकरण के बदलते आयाम'' केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली, 2016
2. सिंह दिनेश कुमार : ''आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण पहली जरूरत'' केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली, 2016
3. महाजन एस : ''सामाजिक बदलाव के लिए शिक्षा'' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2016
4. एस अखिलेश : ''महिला सशक्तिकरण दशा एवं दिशा'' गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, 2010
5. शर्मा डॉ0 प्रज्ञा : ''भारतीय समाज में नारी'' प्वाइंटर पब्लिशर्स जयपुर, पृष्ठ–116

6. भसीन कमला : ''भारतीय संदर्भ में महिला सशक्तिकरण'' योजना सितम्बर, 2016, पृष्ठ–09
7. कानिटकर मुकुल : ''भारत में महिला शिक्षा : समाज व सरकार की भूमिका'' योजना सितम्बर, 2016, पृष्ठ 37
8. रामचंद्रन प्रेमा : ''महिलाए, स्वास्थ्य और विकास'' योजना अक्टूबर, 2018, पृष्ठ 57
9. नमूना पंजीकरण प्रणाली (एस0आर0एस0): जून 2025 बुलेटिन
10. शर्मा सुभाष : ''भारत में मानवाधिकार'' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2009
11. लूथरा गीता : ''महिला सशक्तिकरण कानूनी प्रावधान'' योजना अक्टूबर, 2018, पृष्ठ 39
12. विरदी डॉ0 मनीता कौर : ''महिला सशक्तिकरण और बदलती तस्वीर'', बाइट स्काई पब्लिकेशन्स, 2021
13. अंसारी एम0ए0 : ''महिला और मानवाधिकार'' ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2003